International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 24-28

दाम्पत्य–जीवन के रिसते हुए रिश्तों का सन्तान पर दुष्प्रभाव (मोहन राकेश कृत 'आधे–अधूरे' के सन्दर्भ में)

डॉ. विनोद कुमार
कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफैशनल युनिवर्सिटी, (पंजाब)

सारांश
आज आधुनिक परिवार में पति–पत्नी की सम्बन्धहीनता और संघर्ष का स्वरूप बहुतायत से देखने को मिल रहा है। स्त्री और पुरुष अतिपरिचय और अति–निकटता के सूत्र में बंधकर भी अजनबी और मेहमान के रूप में निर्वाह करने की नियति से अभिशप्त हैं। दोनो एक दूसरे के होने में नहीं न होने के बोध से टूटते हैं। उनके बीच अगर कहीं सम्बन्ध के खुष्क पर्दे की झलक है, तो सिर्फ लोगों की नजर में है, अन्दर से सभी सम्बन्ध नष्ट हो चुके हैं।

मूलशब्द: घर, आधे–अधूरे, मुक्ति–भावना, अधिकार, हवा, विद्रोह, सम्बन्ध–सूत्र, मनोविज्ञान, सम्बन्धहीनता

प्रस्तावना

मोहन राकेश ने पति–पत्नी के इस अजनबीयत के सूत्र को अपनी कहानियों 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिने', 'क्वार्टर' और उपन्यास 'अन्धेरे बन्ध कमरे' और 'अन्तराल' से लेकर नाटक में आते–आते 'आधे–अधूरे' में साफ और सुथरे ढंग से दिखाया है। इसमें पति–पत्नी एक दूसरे से मुक्त होना चाहकर भी सम्बन्धों को बनाने के लिए विवश हैं। महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है और सावित्री भी उसे कही न कही चाहती रही होगी। लेकिन शादी के बाद सावित्री महेन्द्रनाथ से दूर होना चाहती है। क्योंकि जीवन में सावित्री को महेन्द्रनाथ से बहुत कुछ की अपेक्षा थी लेकिन महेन्द्रनाथ की बेकार हालत के कारण उसकी महत्वकांक्षाओं और इच्छाओं को वह पुरा नहीं कर सकता है। पत्नी को खुद ही घर का खर्चा करना पड़ता है। उसके लिए उसे घर के बाहर जाकर नौकरी करनी पड़ती है। सावित्री महेन्द्रनाथ को बेकार आदमी समझने लगती है और पूर्ण पुरुष की तलाश करने लगती है और अपनी बची हुई जिन्दगी को व्यतीत करने की कामना करने लगती है। दूसरी और महेन्द्रनाथ पत्नी के नये–नये मित्रों के आने जाने के लिए उसका विरोध करना चाहकर भी नहीं कर पाता है। उसकी यह परिस्थिति उसे अपने घर से अलग कर देती है।

घर की तलाश मोहन राकेश के सभी नाटकों में है, पर 'आधे–अधूरे' पूरी तरह एक घेरलू नाटक है। वैसे आनुवांशिक रूप से यह नाटक अर्थ की कई छायाएँ उजागर करता है – नारी की मुक्ति–भावना, विघटनशील जीवन–मूल्य, वैवाहिक सम्बन्धों की विडम्बना और पुरुष का अधूरापन, किन्तु नाटक के केन्द्र में दो ही बातें मुख्य हैं घर और घर में रहने वाले लोगों का अधूरापन है। घर है तो ऐसा जिसमें बिखराव और गर्द है। उसमें किसी चीज का कोई ठौर–ठिकाना नहीं और उनमें कोई संगति नहीं है। संगति इसलिए नहीं कि संगति बिठानेवाला कोई नहीं है। घर है पर 'घर में कई नहीं है। यदि कोई घर में होता भी, तो दूसरा नहीं होता और जब सब होते भी हैं तों उनमें संवाद नहीं होता है। 'किन्नी स्कूल से आई तो घर पर कोई नहीं था और जब आई हूँ तो तुम भी हो डैडी भी है, बिन्नी भी है, पर सब लोग ऐसे चुप हैं जैसे सबको उस घर से शिकायत है।'[3] चुप्पी इस घर में रहने की मजबूरी और लड़ना उससे बाहर निकलने का बहाना है। घर को कोई अपनाने को तैयार नहीं। लड़का सवाल करता है इसे घर कहती हो तुम? बड़ी लड़की को जब सावित्री यह कहती है कि 'तेरा अपना घर है' तो वह चौंक उठती है 'मेरा अपना घर'? गृहस्वामी के सामने एक चुनौती है कि घर उसका है इसीलिए वह कहता है 'तो मेरा घर नहीं है, यह कह दो नहीं है? उसको बार–बार यह अहसास दिलाया गया है कि वह एक कीड़ा है, जो उस घर को खा गया है। अकेली सावित्री उसे किसी तरह थामे हुए है। वह भी जानती है कि 'मेरे करने से इस घर का जो कुछ हो सकता था, आज तक वह हो चुका है। मेरी तरफ से अब यह अन्त है उसका निश्चित अन्त है। इस अन्त को लानेवाली एक हवा है, जो इस घर पर हावी है।'[1] यही हवा बाहर का गर्द इस घर मे लेकर आती है। 'अधिकार, रुतबा, इज्ज्कात यही सब बाहर के लोगों से मिल सकता है उस घर को, आपसी प्रेम, सदभाव और आदर यह घर स्वयं अपने को नहीं दे पाता। इस घुटन और तनाव के अभिशप्त जीवन का प्रतीक यह घर नरक जैसा अनुभव देता है।

इसमें गृहस्वामिनी का जो रूप सामने आता है। वह हर वक्त घूमते–फिरते रहने वाली नारी है। दूसरी और गृहस्वामी एक पशु–तुल्य अस्तित्व झेलता दिखाई देता है। जिस पर एक चुप्पी थोप दी गई है। अपने ही अकर्मण्य जीवन की परिणति को वह निरीह होकर पत्नी की लताड़ों के बीच भोगता दिखाई देता है। वह नकारा, दब्बू और निठल्ला है और भावना के स्तर पर निर्जीव और निर्वीय, किन्तु अन्दर से बहुत गहराई में कही तल्खी को छिपाए हुए है और ऐसे घर में सन्तान भी माता–पिता की कार्बन–कापी है। बड़ी लड़की बिन्नी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भागकर इस अहसास को सार्थक करती है कि वह अपने घर से एक हवा लेकर गई है। दूसरी लडकी किन्नी छोटी उम्र में काम–सम्बन्धों की चर्चा में जो रस लेती है, वह भी उसकी माँ के व्यक्तित्व का ही एक अंग लगता है। इसी प्रकार लडका अपने बाप का ही प्रतिरूप जीवन बिताता है। सब निष्क्रिय, परजीवी, कामुक अस्तित्व को दोहराने लगते हैं। घर की यह हालत बनाने में किसका हाथ है यह स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं है। सब एक–दूसरे पर दोषारोपण करके रह जाते हैं। सावित्री सारा दोष महेन्द्रनाथ पर थोप देती है। महेन्द्रनाथ अपने ऊपर लगाए लांछनो से बिद्ध हुआ एक आहत संवेदना में घुलता दिखता है,–'यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से यह बिना बताए एक रात घर से क्यों चली गई थी।' वह अपने को रबर–स्टैम्प आरामतल न जाने क्या–क्या महसूस करता है। फिर भी वह और उसी की तरह और लोग उस घर से चिपके हैं क्योंकि उनकी 'हड्डियों में जंग लगा है' और वे अन्दर से आरामतलब हैं। घर किसी न किसी रूप में उन्हें सुविधा और सुरक्षा देता है। इसलिए इस अहसास के बावजूद कि कोई मुझे वजह बता

सकता है एक भी वजह कि क्यों मुझे रहना चाहिए इसमें वे वजह जानते हुए भी उस घर में रहते हैं। सुविधा के मूल्य पर उनके लिए विद्रोह अकल्पनीय बन जाता है फलतरू यथास्थिति कही नहीं टूटती है।

घर की मायावी तलाश पुरुष की आकांक्षा को व्यक्त करती है जिसमें वह स्त्री को अपने लिए उपयोगी होते देखना चाहता है। ऐसे में पुरुष की स्थिति प्राथमिक हो जाती है और स्त्री की गौण। मोहन राकेश स्त्री को भी अपने जीवन में स्थान देने की बात करते हैं। तीसरे स्थानवाली नारी पुरुष को घर कहाँ दे सकती है? पुरुष उसके साथ घर बसा भी ले तो वह नारी का घर नहीं होगा। घर एक भावात्मक रचना है एक शरण स्थल है जहां पर स्त्री पुरुष एक साथ रहते हैं। पर स्त्री–पुरुष घर की आकांक्षा लेकर भी किस प्रकार घर नहीं बसा पाते हैं। इस तथ्य को मोहन राकेश ने अपने नाटक और जीवन में सही रूप में समझा है। मोहन राकेश की तरह महेन्द्रनाथ भी इस सत्य को भूल गया कि घर की जरूरत उसी को नहीं, सावित्री को भी है। केवल अपने अनुकूल घर चाहने का अर्थ है कि वह दूसरे के अनुकूल न हो। सावित्री और महेन्द्रनाथ के हाथ वह घर लगा जो उन्हें उनका नहीं लगता था। मनहूसियत के इसी तत्व को वे खोज नहीं पाते। 'तुम बता सकती हो वह क्या चीज है और कहां है वह इस घर के खिड़कियों दरवाजे में, छत में, दीवारों में, तुमसे, डैडी में, किन्नी में, अशोक में, कहाँ है वह मनहूस चीज?'[2] नाटक के मध्य भाग में वह मनहूसियत को ढूँढने की कोशिश करती है और अन्त में दायित्व निर्धारण के प्रयास में परस्पर दोषारोपण ही हाथ लगता है घर ज्यों का त्यों रह जाता है। महेन्द्र और सावित्री दो समानान्तर रेखाओं की तरह कभी नहीं मिल पाते इसका कारण दोनों की टूटन स्थिति है। सावित्री के टूटने का कारण है महेन्द्रनाथ और महेन्द्रनाथ के टूटने का कारण सावित्री है। दोनो के जीवन दो अँधेरे बन्द कमरे हैं। जिससें वे बाहर निकलना चाहकर भी नहीं निकल नहीं पाते। घर तब केबल लड़ने, कुढ़ने और झींकने के लिए रह जाता है। यह नाटक आज के शहरी क्षेत्र में मध्यमवर्गीय परिवारिक जिन्दगी की विसंगति को उभारता है। 'शहरों में भीड़ के फैलाव के साथ आदमी सिकुड़ता जा रहा है और जितना वह सुकुड़ता जाता है, उतनी ही उसकी यह जरूरत बढ़ती जाती है कि कोई उसे समझे, कोई तो उसकी अलग से पहचान करे, कहीं तो वह इन्सानियत के रिश्ते कायम करे किन्तु रिश्ता जुड़ने के बजाय आदमी अंधेरे में घिर जाता है फिर कहाँ रिश्ते टूट जाते हैं और कहीं से इसका अहसास ही नहीं होता है।' ऐसा लगता है कि जैसे हर चीज दोहराई जा रही है, जो भोगा जा चुका है, उसी को भोग रहे हैं। और फिर इसी ऊब, घुटन और तनाव में छोटी–छोटी खुशियाँ महत्वपूर्ण हो जाती है। महेन्द्रनाथ जुनेजा के पति, सिंघानिया सावित्री के पास, सावित्री जगमोहन के पास उन्ही की खोज करती है। लड़का लड़कियों की तस्वीरें बटोरने और छोटी लडकी कच्ची उम्र में ही सेक्स की बातें करने लगती है। साधनों और सीमाओं से परे सावित्री और उसका परिवार एक सुविधापरक रंगीली जिन्दगी जीना चाहता है, किन्तु असफलता और निराशा के बीच सारी ख्वाहिशें जमकर ठंडी हो जाती है।

सारी कथावस्तु महेन्द्रनाथ और सावित्री के टूटते वैवाहिक सम्बन्धों पर आधारित है। साथ रहने के बावजूद उनके बीच अपेक्षा, घृणा और खीझ की ऐसी दीवारें है जो उन्हें परस्पर जुडने नहीं देती। सम्भवतः जुड़ाने वाले तन्तु एकदम टूटे नहीं किन्तु दोनों के बीच आपसी समझदारी और सम्प्रेषण का अभाव है। यदि उनका कोई मानवीय रिश्ता उभरता है तो रात दिन एक–दूसरे की जान नोंचने का है और उसमें भी एक कोने से महेन्द्रनाथ, जिम्मेदार लगता है और दूसरे कोनों से सावित्री लगती है। सावित्री महेन्द्रनाथ को अधूरा आदमी मानकर उससे खिन्न रहती है और महेन्द्रनाथ सावित्री के व्यवहार को देखकर मन मारकर रह जाता है। स्त्री पुरुष को अर्थपूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध में बाँधनेवाला एक तत्व, प्रेम या सेक्स माना जा सकता है। प्रेम या सेक्स की एक शर्त पूर्ण आत्मसमर्पण या आत्मविस्मरण भी है। सावित्री में उसका अभाव है वह ठीक अपने नाम के विरुद्ध पति से विमुख है और अनेक पुरुषों से सम्पर्क बनाती है। वह सोचती है कि महेन्द्रनाथ के स्थान पर यदि दूसरा पुरुष होता तो शायद जीवन में सब कुछ ठीक चलता। इसीलिए वह एक के बाद दूसरे पुरुष की खोज करती है। यह खोज पहले मन के स्तर पर शुरु होती है फिर शरीर के स्तर पर उतर आती है। हर तलाश पर लगता है जैसे आकाश बाहों में भर लिया है, पर हर बार बाहों में आकर जैसे वह टूटकर खंड–खंड हो जाता है। यह अनुभव उसे दुनियादार बना देता है। जिन–जिन पुरुषों की ओर वह मुखातिब होती है उनसे वह एक और सेक्स की पुर्ति करती है दूसरी और अतिरिक्त अनुग्रह जुटाने की व्यावहारिक बुद्धि भी दिखाती है। यद्यपि चारों पुरुषों से उसकी अपेक्षाएँ अलग–अलग हैं, फिर भी सेक्स और स्वार्थ–साधन की प्रवृति उसमें मुख्य दिखाई देती है। इस रूप में वह अपराधी और शिकार दोनों है। परिस्थितियाँ उत्तरदायी हो सकती है। पर उसका दोष इतना तो है ही कि वह एक रोल स्वीकार कर लेती है और उस पर चलकर जिन्दगी गुजार देती है। जब वह जागरुक निर्णय लेना भी चाहती है तो वह निर्णय नहीं ले पाती है।

सावित्री उस मध्यवर्गीय मानसिकता की शिकार है जो धन को जीवन में अतिरिक्त महत्व देती है। यही वृति उसे विभिन्न पुरुषों से जोड़ती है और इसी के वशीभूत होकर वह अपनी देह का अस्त्र की तरह प्रयोग करती है। कुछ अपने व्यवहारिक लक्ष्यों के लिए वह अपने को व्यक्ति से वस्तु बना डालती है। इसी से वह अपने को छलती है जिस पूरेपन की तलाश उसे अपने अन्दर करनी चाहिए थी, उसकी तलाश वह अपने से बाहर औरों में करती है। इस तलाश में उसे वे सब पुरुष अधूरे दिखाई देते हैं, जिनके सम्पर्क में वह आती है। उनके माध्यम से वह उन रोमानी क्षणों से बंध जाती है जो उसके यथार्थ जीवन के सत्यों को झुठलाते हैं और उन्हें आकर्षक बनाते हैं। वह दूसरों के इरादों से शोषित होना इन मोहान्धता में स्वीकार कर लेती है कि वह स्वयं उनका शोषण करने का इरादा रखती है। उस उपलब्धि के लिए वह क्षण को स्वीकार कर लेती है और क्षण के बीतते ही नए क्षण की तलाश शुरु करती है। यह भावना से विहीन सम्बन्ध–सूत्र रातों के साथ जुड़ा होने के कारण आंतरिक्ता का विकास नहीं होने देता है। इसके अभाव में पुरुषों के साथ उसका सम्बन्ध वस्तुगत या समूहगत सा बनकर रह जाता है। यह एक विलक्षण बात है कि पुरुषों के साथ अपने सम्बन्धों को वह एडवेंचर के रूप में लेती है और विरोधों के बीच जीती है। क्षणिक वासना और स्वार्थी प्रेम की आकांक्षा उसमें भरी पड़ी है। यह स्थिति प्यार की अवधारणा के विरुद्ध आती है?

मोहन राकेश ने इस तथ्य को जीवन में पाया था। एक पत्र में एक बार उन्होंने लिखा एक बात कहूँगा अप्राप्त की प्राप्ति कल्पना में नहीं हो सकती भावना में होती है, क्रिया में होती है। तुम जो हो वह भी बनी रहना चाहो और अतिरिक्त भी लेना चाहो, यह कैसे होगा? यह नहीं कि उजली धूप में भीगी घटियों तक जाने के रास्ते नहीं है। लेकिन रास्ते के अतिरिक्त चरण भी तो चाहिए। यह अपनी समर्थता को दूसरों की देन मान लेने से असन्तोष कुछ हल्का भले ही हो जाए, परन्तु प्राप्त क्या होगा? दूसरे को उपादान के रूप में कभी मत ग्रहण करो, चाहे वे पुरुष हो भावना हो या पत्थर। अपने से बाहर उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकारो। प्यार भी लो लेकिन

किसी रेखा के भीतर या बाहर नहीं, क्योंकि भावना में कोई रेखा नहीं होती।

मोहन राकेश का 'किसी के नाम पत्र' मोहन राकेश स्मृति अंक, 'सारिका' 'किसी एक के नाम' लिखे मोहन राकेश के पत्र का यह अंश किसी भी नारी के नाम हो सकता है। मल्लिका के नाम न सही तो सुन्दरी के नाम हो सकता है और कम से कम सावित्री के नाम तो निश्चयतः हो सकता है। सावित्री में वे सब बाते हैं, जिनको ऊपर मोहन राकेश ने प्रेम की अप्राप्ति के सन्दर्भ में लिखा है। अमूर्त चाह, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए ललक, भावना और क्रिया का अभाव, दूसरों को अपादान समझने की भावना और अपने असमर्थता को दूसरों की देन समझने की प्रवृति सब उसमें है उसमें उजली भीगी घाटियों तक जाने के लिए कामना तो है पर चरण नहीं है। वह स्वयं आधी–अधूरी है। इस कोटि की आधी–अधूरी नारियों का संकेत स्ट्रिंडबर्ग ने मिस जूली की भूमिका में देने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार ऐसी आधी औरतें अपने को अधिकार यश और धन आदि के लिए पराए हाथों बेच देती हैं और कई पीढियों तक एक त्रास और ह्रास का कारण बनती है। भ्रष्ट पुरुष ही ऐसी स्त्रियों को चुनते हैं और इन प्रकार ऐसी सन्तान को जन्म देते हैं जो दुखों की भागी बनती हैं।[3]

एक सुखी वैवाहिक सम्बन्ध को धराशायी करने से सबसे बड़ा हाथ उन उपेक्षाओं का होता है जो स्त्री–पुरुष की एक–दूसरे से होती है। अन्तराल उपन्यास में मोहन राकेश ने इस तथ्य को बड़ी बारीकी से उभारा है। कोई भी सम्बन्ध एक–साथ दो दो अपेक्षाओं की पूर्ति से ही निभ सकता है और ये अपेक्षाएँ भी एक सीमा तक ही पूरी हो सकती हैं क्योंकि हर व्यक्ति एक भरे–पूरे बाजार की तरह है जिसके सब कुछ की तुम प्रशंसा कर सकते हो पर वह सब कुछ तुम अपने लिए नहीं ले सकते हैं। तुम उसमें से वही लो जिसे लेने की सामर्थ्य तुममे है। इसकी चिन्ता मत करो कि शेष कहाँ जाता है, कौन लेता है। वस्तुत सब कुछ पा जाना और एक–साथ पा जाना, अपनी अपेक्षाओं के आधार पर दूसरे का जीवन को नियन्त्रित करना अच्छे पारिवारिक सम्बन्धों में विसंगति पैदा करता है। उस तथ्य को मोहन राकेश ने बखूभी समझा है।

सावित्री का अधूरापन कुछ उसके व्यक्तित्व और कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। उसका व्यक्तित्व आक्रामक नारी का व्यक्तित्व है। दूसरी और महेन्द्रनाथ दब्बू है। आक्रामक स्त्री जब प्रतिस्पर्द्धा करती है तो पुरुष की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं कर पाती और जब वह उसे प्रतियोगिता के अयोग्य पाती है तो भावात्मक सुरक्षा के लिए पूरे आदमी की तलाश उसके लिए आवश्यक हो जाती है। वैवाहिक असन्तोष का एक मूल कारण यह भी है। जब एक प्रकार की सम्बन्धहीनता पति–पत्नी में पनपने लगती है। तब स्त्री पुरुष विरोधी गुणों को स्वीकार करने के लिए बाध्य होते हैं। युग का विचार है कि स्त्री और पुरुष दोनों में ही दोनों के सजातीय गुण होते हैं। जिस पुरुष का नारीत्व भाव पत्नी के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाता, वह थोथी भावनाओं और अज्ञात मन स्थितियों का दास हो जाता है। इसी तरह वे स्त्रियाँ जिनका पुरुष भाव पति में सन्निहित नहीं हो पाता, वे आक्रामक और सिद्धान्तवादी बन जाती हैं और पुरुष के लिए वे नारी बड़ी कष्टकारक होती हैं और इन लोगो का आधा–अधूरा व्यक्तित्व रह जाता है।

बाल–मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के मनुष्य के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं की वर्णन करता है तथा उनको वैज्ञानिक ढंग से समझने की चेष्टा करता है वहीं बाल–मनोविज्ञान बालकों को मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है। 'हरबर्ट स्पेन्सन ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक नागरिक की शिक्षा में बाल–मनोविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। बाल–मनोविज्ञान के ज्ञान के बिना सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता।'[4] इसके पूर्व रूपो ने भी 16वीं शताब्दी में बालक की शिक्षा के लिए बाल–मनोविज्ञान की आवश्यकता बताई थी और कुछ अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बालक के मनोविकास के संबंध में अपनी 'एमील' नामक पुस्तक में लिखा है। बाल–मनोविज्ञान का प्रारम्भिक अध्ययन फ्रांस में हुआ। पेरिस के पीकार महाशय ने बाल–मनोविज्ञान के लिए 'थॉट एंड लैगुएज ऑफ थी चाइल्ड' नामक पुस्तक के रूप में अपनी मौलिक देन दी। अभिभावक–बालक सम्बन्ध को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हैं। जो निम्नलिखित हैं –

अभिभावक अभिवृतियाँ रू अभिभावक–बाल सम्बन्ध बहुत कुछ अभिभावकों की अभिवृतियों से प्रभावित और निर्धारित होते हैं। कई बार देखा गया है कि कुछ अभिभावक अपने बच्चों का तिरस्कार करने वाले होते हैं। अभिभावकों का तिरस्कार बालकों के आत्म–सम्मान को चोट पहुँचाने वाला होता है।[5] यह देखा गया है कि अभिभावकों का तिरस्कार बालकों में अनेक विशिष्ट लक्षण उत्पन्न कर सकता है, जैसे आक्रामकता, निर्दयता, झूठ बोलने की प्रवृति, कुसमायोजन, समाज विरोधी व्यवहार, असहायता की भावना, कुण्ठा तथा अधिक दिखावा करने की प्रवृति आदि। अभिभावक अभिवृतियों की यह स्थिति 'आधे–अधूरे' नाटक में देखने को मिलती है जहां सावित्री किन्नी की बातों का तिरस्कार करती है और उसकी बातों की ओर ध्यान नहीं देती है।

अभिभावकों का पक्षपात अधिकांश अभिभावक बालकों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर पाते हैं। होता यह है कि यह अपने एक बच्चे से ज्यादा अच्छा व्यवहार करके हैं तथा दूसरे से कम अच्छा व्यवहार करते हैं। फिर बच्चों में अपने माता–पिता के प्रति विरोधी भावना पैदा होने लगती है और वह फिर उनके आपस में अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते हैं और बच्चे उनके आगे बोलने लग पड़ते हैं। अभिभावकों का पक्षपात की स्थिति आधे–अधूरे नाटक में भी दिखाई पड़ती है। जब किन्नी की कोई बात नहीं सुनता तो वह कहलती है कि इस घर में कोई मेरी नहीं सुनता, किसी को मेरी परवाह नहीं है।

परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर रू अभिभावक–बालक सम्बन्ध को परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर कारक भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। मध्यश्रेणी अभिभावक बालकों से परिवार के लिए अनेक आशाएँ रखते हैं। उदाहरण के लिए बच्चो से यह आशा की जाती है कि वह सामाजिक अनुरूपता स्थापित करेंगे। अर्थात बच्चे समाज के नियमों, मूल्यों और व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करेंगे। बालकों को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वह ऐसा कोई कार्य न करे, जिससे परिवार की बदनामी या आलोचना हो। बालकों के परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर उनके मित्रों के परिवारों के सामाजिक–आर्थिक स्तर से निम्न होता है तब बालक अपने माता–पिता पर शर्म महसूस करते हैं और खुद पर भी। परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर भी बच्चों को प्रभावित करता है। आधे–अधूरे में भी यह स्थिती देखी गई है। जब अशोक सावित्री को उसके बॉस के घर आने का विरोध करता है।[6]

माता–पिता का व्यवसाय रू अभिभावक और बालक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाला यह एक महत्वपूर्ण कारक है। पिता के व्यवसाय का परिवार के बच्चों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अधिक आयु के बच्चों की सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत कुछ पिता के व्यवसाय से निर्धारित होती है। कुछ बालक अपने पिता के व्यवसाय को बताने पर शर्म का अनुभव करते हैं। उन बच्चों में पिता के प्रति विपरीत

अभिवृतियाँ निर्मित होती हैं। फलस्वरूप अभिभावक–बालक सम्बन्धों के बिगडने की संभावना बढ़ जाती है। माँ का व्यसाय भी बच्चों के व्यवहार को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। यदि माँ किसी व्यवसाय में होती है तो छोटे बच्चे को अकेले रहना पड़ता है जिससे उनमें अकेलेपन और अप्रसन्नता की भावना पैदा हो जाती है। यह भावनाएँ उस समय और तीव्र हो जाती हैं जब बालक के दूसरे साथियो की माँ घर पर रहकर उनका पालन–पोषण करती है और उन्हें स्नेह देती है। इस अवस्था में बालक–अभिभावक सम्बन्ध मधुर नहीं होते हैं। पिता और बच्चों के सम्बन्धों के बिगड़ने की स्थिती 'आधे–अधूरे' नाटक में भी देखने को मिलती है। जब अशोक महेन्द्रनाथ को कोई बात कहता है तो महेन्द्रनाथ को लगता है कि वह उसे आगे से जवाब दे रहा है।[7]

टूटते परिवार रू जब परिवार में तलाक की स्थिती यां परिवार के बड़े–बूढ़े या पिता अधिक दिनों के लिए परिवार के बाहर रहते हैं तो इन अवस्थाओं में चल रहे परिवार टूटते परिवार कहलाते हैं। बहुधा ऐसे परिवारों में आर्थिक समस्याएँ अधिक जटिल होती हैं। यह भी अवस्था हो सकती है कि परिवार में माँ न हो और बच्चे का पालन–पोषण पिता को करना पड़ रहा हो। अथवा पिता न हो तो बच्चे का पालन–पोषण माँ को करना पड़ रहा हो। इन सभी परिस्थितियों में अभिभावक–बालक सम्बन्ध सामान्य नहीं होते हैं। परिवार में पति–पत्नी के सम्बन्धों के टूटने की स्थिति 'आधे–अधूरे' नाटक में भी दिखाई देती है। सावित्री और महेन्द्रनाथ के निम्नलिखित संवादों से यह बात स्पष्ट होती है।[8]

पुरुष–एक : हाँ. . . . छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज्कात – यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे से। मेरे भरोसे से सब–कुछ बिगड़ता आया है।[9]

माता और पिता का प्रत्यय : बालक में निर्मित माता और पिता का प्रत्यय भी अभिभावक और बालक सम्बन्धों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। बच्चे के लिए माँ वह स्त्री है, जो उनकी देखभाल करती है, उन्हें प्यार करती है, उनकी शैतानियों को सहन करती है तथा संकट के समय उनकी सहायता करती है।[10] बालक और माँ के सम्बन्ध में बिगाड़ उस समय प्रारम्भ हो जाता है जब माँ बालक के अनुसार उसके साथ व्यवहार नहीं करती है। एक मध्यवर्गीय बालक के लिए पिता वह व्यक्ति होता है जो बच्चों को शीघ्र समझ लेता है। बच्चों को शिक्षा देता है, बच्चों के विकास के लिए समय–समय निर्देश देता है। बालकों में पिता के प्रति बने यह प्रत्यय यदि वास्त्विक जीवन की परिस्थितियों से मेल नहीं खाते तो बालक और पिता के पारस्परिक सम्बन्ध तनावपूर्ण हो जाते हैं। 'आधे–अधूरे' नाटक में भी माता–पिता का प्रत्यय को देखा गया है।[11]

यह विसंगति महेन्द्रनाथ या तीन अन्य पुरुषों की ही नहीं, परिवार की लड़कियों और लडकों में भी है। अशोक, बिन्नी, किन्नी आदि महेन्द्रनाथ की विसंगति के ही कुछ और अधूरे रूप हैं। वस्तुतः मोहन राकेश ने एक ही मूल समस्या को लेकर दो पीढियों के नग्न सत्य को उघाड़कर रखा है। कार्ल यास्पर्स ने ठीक ही कहा है कि जब जीवन एक कार्य–व्यापार रह जाता है तो इसकी ऐतिहासिक विशेषता खत्म हो जाती है, जिससे विभिन्न लोगों में एक स्तरीयता आ जाती है। यौन आकांक्षा जो युवा–वर्ग की अपेक्षित भूख है, वह सबकी भूख बन जाती है और एक खास उम्र के बीत जाने पर भी बड़ी उम्र के उस ओर अपना रुझान दिखाने लगते हैं। लोग ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे वे सब एक ही उम्र के हों। बच्चे बड़े लोगों की तरह हो जाते हैं। जब बूढ़े जवान होने का दिखावा करें तों जवान लोगों के मन में उनके लिए कोई आदर नहीं रह जाता। आधे अधूरे में दो पीढियों के बीच अधूरेपन की यही विसंगति है। बड़ी उम्र के लोग सावित्री, सिंघानिया, जगमोहन सब युवाओं, जैसा विकृत व्यवहार करते हैं। ऐसी हालत में तेरह वर्ष की उम्र में किन्नी सैक्स की चर्चा में आनन्द लेने लगते है, बड़ी लड़की माँ के प्रेमी के साथ भाग जाती है और लड़का नंगी तस्वीरें काटने में दिन गुजारता है। किसी रचनात्मक आयोजन में विसर्जित न रह पाने की स्थिति में उसकी सृजन शक्ति अपने ही मूल उत्स की ओर लौट आती है और उसके लिए जिन्दगी में सेक्स ही सबसे बड़ी समस्या बन जाती है एक स्वस्थ आदमी की यौन मुक्ति के रूप में नहीं एक घुटे आदमी की यौन विकृति की स्थिति हो जाती है। 'पति–पत्नी में विखण्डन की जो स्थिति है, उनका उनके बच्चों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। बड़ी लडकी बिन्नी किसी की बात नहीं मानती है और अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है नाटक के सारे पात्र या तो आधे है या अधूरे हैं। नाटक इस अधूरेपन के कारणों के कुछ संकेत देता है। उसमें आर्थिक, मनोवैज्ञानिक कारण मुख्य हैं। रागात्मक सम्बन्ध का अभाव भी एक बड़ा कारण है पर सबसे बड़ा कारण है सिर्फ अपने लिए जीना, निर्भरता यौन विकृति भी उसमें समाहित हैं। कुछ बातें सब में सामान्य है, पर विडम्बना यह है कि उनमें दूसरे के लिए न मानवीय भावना है न ही आपसी समझ हैं। टकराव उनके जीवन का सत्य है। उसके विषय अलग–अलग भलें हों पर सबके केन्द्र में सावित्री है। पर सबका अधूरापन एक–सा है, यह नहीं कहा जा सकता है। हर पात्र का अपना अधूरापन दूसरे से मिलता–जुलता अवश्य है। सारे पात्र जहाँ अपने को दोहराते हैं वहां अधुरेपन की विभिन्न स्थितियों का संकेत भी देते हैं। अशोक कल का महेन्द्रनाथ है किन्नी–बिन्नी स्वयं सावित्री की गलतियों को दोहराती है। महेन्द्रनाथ भी पाँच व्यक्तियों में बँटा एक व्यक्ति है या यो कहिए कि उन सबका जोड़ है। अधूरापन अंग–अंगी रूप में कहां नहीं है।

त्मेनसजे – ब्वदबसनेपवदरू वस्तुतः आज का व्यक्ति भीड़ में खो गया है और उसके व्यक्तित्व की निजता नई परिस्थितियों और व्यवस्था में निचुड़ गई है। जैसा कि यास्पर्स ने कहा है 'मानव का अस्तित्व आज समूहगत अस्तित्व हो गया है और वह एक अलग इच्छा को समाप्त कर सामूहिक चेतना का अंग हो गया है।' इसी को आधुनिक चिन्तकों ने संगठन मनुष्य की संज्ञा दी है. एक स्थिति यह भी है कि एक का सत्य दूसरे का सत्य हो सकता है। महेन्द्र, जुनेजा, सिंघानिया या जगमोहन कहीं पर एक हो सकते हैं। सावित्री के सन्दर्भ में समान हैं, वह सब और कहीं भिन्न–भिन्न व्यक्ति हैं। जब एक व्यक्ति दूसरे जैसा लगता है तो उसका अर्थ यह है कि दोनों में शाश्वत या सार्वजनीन तत्व हैं। व्यक्ति की निजता सदा शाश्वतता की ओर प्रवाहित होती है क्योंकि व्यक्ति के प्रयोजन के लिए नहीं होती है। ऐसी स्थिति समानता की बात करता है वह वैचारिक यथार्थ है और एक बार व्यक्ति–व्यक्ति की समानता को स्वीकार कर लेना परिस्थति के यथार्थ को स्वीकार करना है। नहीं तो व्यक्ति महेन्द्रनाथ की तरह परिस्थितियों के दबाव से यों जम जाता है कि अतीत उसकी चेतना पर हमेशा हमेशा के लिए अंकित हो जाता है, फिर वही वर्तमान बन जाता है, वही भविष्य बन जाता है। फलतः परिवर्तन की सारी सम्भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। मोहन राकेश ने 'आधे–अधुरे' नाटक के द्वारा मध्यवर्गीय परिवारों की समस्या को हमारे सामने दिखाया है। कौन–कौन से कारणों से दाम्पत्य विखण्डन होता है और पति–पत्नी के बीच के विखण्डन का उनके बच्चो पर क्या असर होता है और वह कैसे अपने आप में असुरक्षा महसुस करते हैं मोहन राकेश ने आने वाली पीढ़ी को अपने इस नाटक के माध्यम के द्वारा यह बताया है कि अभिभावक

अभिवृति, अभिभावकों का पक्षपात, परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर, माता–पिता का व्यवसाय, टूटते परिवार, माता और पिता का प्रत्यय इन कारणों से बालकों के मनोविज्ञान पर नाकारात्मक असर होता है। जिसकी वजह से उनका सन्तुलित विकास नहीं हो पाता है और उनका व्यवहार भी सही नहीं रह पाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चातक, गोविन्द, आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत – मोहन राकेश,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2003, पृ. 90
2. वही, पृ. 91
3. वही, पृ. 93
4. श्रीवास्तव, डी.एन. और डॉ. प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान रू बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,2000, पृ. 485
5. वही, पृ. 486
6. राकेश, मोहन, आधे–अधूरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 73
7. राकेश, मोहन, आधे–अधूरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 56–57
8. श्रीवास्तव, डी.एन. और डॉ. प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान रू बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,2000, पृ. 489
9. राकेश, मोहन, आधे–अधूरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009पृ. 58
10. श्रीवास्तव, डी.एन. और डॉ. प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान रू बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,2000, पृ. 490
11. राकेश, मोहन, आधे–अधूरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 59